IJNRD.ORG ISSN : 2456-4184
INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD) | IJNRD.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

# "स्थिरता की अनिवार्यता: वैदिक काल से आधुनिक युग तक पर्यावरण और मानव अस्तित्व"

शुभम मनकोटिया (SHUVAM MANKOTIA)
• विद्यार्थी, हिन्दी विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू व कश्मीर
• ई-मेल:- Shuvammankotia2627@gmail.com

मानव का प्रकृति से संबंध शश्वत है। मानव जीवन की पर्यावरण से बाहर कल्पना की ही नहीं जा सकती। मानव पर्यावरण से घिरा हुआ है, उसमें रहता है, उससे प्रभावित होता है तथा उसे प्रभावित करता है। वास्तव में पर्यावरण के सभी तत्व प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मानव जीवन व मानवकल्याण को प्रभावित करते है और उनका यह संबंध अटूट है।

पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति 'परि' उपसर्ग के साथ 'आवरण' धातु की संधि से होती है। पर्यावरण एक व्यापक शब्द है। यह उन सम्पूर्ण शक्तियों, परिस्थितियों एवं वस्तुओं का योग है, जो मानव जगत् को परावृत्त करती हैं तथा उनके क्रियाकलापों को अनुशासित करती हैं। हमारे चारों ओर जो विराट प्राकृतिक परिवेश व्याप्त है, उसे हम पर्यावरण कहते है। सर्वप्रथम डॉ. रघुवीर ने तकनीकी शब्दकोष निर्माण के समय 'इन्वायरमेंट' (फ्रेंच भौतिक शब्द) के लिए 'पर्यावरण' शब्द का प्रयोग किया है। वे ही इसके वास्तव में प्रथम 'शब्द प्रयोक्ता' है।

पर्यावरण का ही रूप है 'जीवमंडल' जो एक पारिस्थितिक तंत्र है जिसकी रचना जैविक संघटक, अजैविक संघटक तथा सौर्यिक उर्जा से होती है। इसके तीन भाग है-स्थलमंडल, जल-मंडल और वायु-मंडल ।
भारतीय संस्कृति में पर्यावरण व प्रकृति का विशेष महत्व रहा है। वैदिक काल से ही प्रकृति को विशेष स्थान प्रदान है। यहाँ प्रकृति को सजीव मानते हुए उसे माँ माना गया है तथा इस जीवनदायिनी को पूज्यनीय कहा है। ईशोपनिषद् के शब्दों में-

"ईशावस्यमिंद सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ॥"

अर्थात ईश्वर की सृष्टि में जो कुछ भी हैं वहीं सब-कुछ पर्यावरण है।

वैदिक ऋषियों ने प्रकृति के समस्त उपकारक तत्वों को देव कहकर उनके महत्व को प्रतिपादित किया है, साथ ही मानव जीवन में उनके पर्यावरणीय महत्वों को भली-भाँति स्वीकारा है। पर्यावरण को संतुलित रखने के लिए जिन देवताओं की महत्वपूर्ण भूमिका है उनमें सूर्य, वायु, वरुण एवं अग्नि देवताओं से संसार व मानव जीवन की रक्षा की कामना की गई है। ऋग्वेद (1/158/1, 7/35/13) तथा अथर्ववेद (10/9/12) में दिव्य, पार्थिव और जलीय देवों से कल्याण की कामना स्पष्ट रूप से वर्णित है। इन देवताओं की कल्याणमयी कृपा हेतु मनुष्य का जीवन ऋणी हो गया है तथा शास्त्रीय कल्पनाओं ने मनुष्य को पितृऋण, गुरुऋण के साथ-साथ देवऋण से भी उन्मुक्त होने की ओर संकेत किया है। अतः वह अपने कर्तव्य में देवऋण से मुक्त होने के लिए भी कर्म करें। वैदिक साहित्य में प्राकृतिक पदार्थों से कल्याण की कामना को 'स्वस्ति' कहा गया है। इस पर आचार्य सायण एवं नैरुक्त चिंतन है कि अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति योग है एवं प्राप्ति का संरक्षण क्षेम है ( ऋग्वेद, 5/51/11)। अतएव सहज सुलभ प्राकृतिक पदार्थों का सुरक्षित रहना 'स्वस्ति' है।

पर्यावरण के संतुलन में वृक्षों के महान् योगदान को स्वीकृत करते हुए मुनियों ने बृहत् चिंतन किया है। मत्स्य पुराण में इनके महत्व एवं महात्म्य को स्वीकारते हुए लिखा गया है कि-

"दश कूप समा वापी, दशवापी समोहद्रः।
दशहद समः पुत्रा, दशपुत्रों समो दुमः ॥"

अर्थात दस कुओं के बराबर एक बावड़ी होती है, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाब एक पुत्र और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है। इसी प्रकार अन्य पर्यावरणीय घटकों के लिए शुभकामनाएँ की गई हैं। जैसे शीघ्र चलने वाली वायु हम लोगों के लिए सब ओर से सुखरूप होकर बहे (ऋग्वेद, 7/35/4)। पवन हमारे लिए सुखकारी चले (यजुर्वेद, 36/10)। पूर्व आदि चारों दिशाएँ व विदिशाएँ हमारे लिए सुखरूप हों (ऋग्वेद, 7/35/8)। समस्त दिशाएँ हमें मित्रावत सुख दें (अथर्ववेद, 19/15/16)। विशेष दीप्ति वाली उष्माएँ हमारा कल्याण करें (ऋग्वेद, 7/35/10)। दिवस और शक्ति हमारे सुखकारी हो (यजुर्वेद, , 36/11)। हम रात-दिन अभ्य रहें (अथर्ववेद, 19/15/16)। मेघ प्रजाजनों के लिए शांतिप्रद हों (ऋग्वेद, 7/35/10) । बिजली और गरज के साथ शब्द करते हुए पर्जन्य (मेघ) देव की वर्षा कल्याणकारी हो (यजुर्वेद, 36/10)। शुक्ल यजुर्वेद में वर्णित 'द्यौं शान्तिः मंत्र' भी इसी परिकल्पना को लिए है जो कि इस प्रकार है

" ओऽम् द्यौः शान्तिरक्षितः शांतिः पृथिवी शान्तिराप:
शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्वीश्वे देवा: शान्तिर्ब्रह्म शांतिः सर्वम् शान्तिः शान्तिरेवः शान्तिः साम मा शान्तिरेधि।
ओऽम् शांन्तिः शान्तिः शान्तिः ॥"

अर्थात द्युलोक से लेकर पृथ्वी के सभी जैविक और अजैविक संघटक संतुलन की अवस्था में रहें। अदृश्य (द्युलोक), नक्षत्रयुक्त दृश्य आकाश (अंतरिक्ष), पृथ्वी एवं उसके सभी घटक जल, औषधियां, वनस्पतियां, सम्पूर्ण देवतुल्य संसाधन एवं ज्ञान संतुलन की अवस्था में रहे तभी सृष्टि और व्यक्ति शांत एवं संतुलित रह सकता है। संभवतः पर्यावरण एवं पर्यावरण संतुलन की इतनी वैज्ञानिक प्रतिभाषा विश्व के किसी अन्य साहित्य में नहीं की गई है।

अथर्ववेद के 63 मंत्रों वाले 'पृथिवी सूक्त' में आथर्वण ऋषि ने मातृरूपिणी धरती की समग्र पार्थिव पदार्थों की जननी तथा पोषिका के रूप में महिमा उद्घोषित की है। पृथ्वी के प्रति उदात्त भावना को व्यक्त करते हुए कहा है-

"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"

अर्थात भूमि मेरी माता है और मैं इस मातृभूमि का पुत्र हूँ। ऋग्वेद में ऊर्जा के अपरिमित स्रोत को देवता मानते हुए गया है - "सूर्यदेवो भव:।"

अरण्यों में रहकर पर्यावरण' की सुरक्षा करने वाले ऋषियों ने आरण्यक साहित्य की सृजना कर विश्व में पर्यावरण सुरक्षा का संदेश दिया है। भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर 'गीता' में प्रकृति को सृष्टि का उपादान कारण बताया है। प्रकृति के कण-कण में ईवर व्याप्त है। महाभारत की महती परम्परा में वृक्षों को काटना महापाप माना गया। इस बात पर बल देने के लिए महाभारत के 'आदिपर्व' में कहा गया है:-

"एकवृक्षोहि यो ग्रामे भवेत् पर्णफलान्वितः ।
चैत्यो भवति निर्ज्ञातिरचनीय सुपूजितः ॥"

अर्थात् यदि गांव में एक पेड़, फल और फूलों से भरा-पूरा हो तो वह स्थान हर प्रकार से अर्चनीय है।
रामायण में प्रकृति संशोधन व सवर्धन हेतु यज्ञों की महत्ता बताई गई है। यज्ञ द्वारा पृथ्वी सस्यादि से पुष्ट होकर सुख देने वाली बनती है। वैदिक ऋषि कहते हैं कि विस्तृत द्युलोक तथा भूमि हमारे इस यज्ञ का सेवन करें और वे यज्ञ से पोषण प्राप्त कर, हमारा भरण-पोषण करें। भक्तशिरोमणि तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में प्राचीन ऋषियों की पर्यावरण के प्रति उदात्त भावनाओं को व्यक्त व्यक्त करते हुए कहा है:-

"जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि।
बंदऊं सब के पद कमल, सदा जोरि जुग पानि ।।"

अर्थात:- जग में जितने जड़ और चेतन जीव हैं सबको राममय जानकर में सबके चरण-कमलों की सदा दोनों हाथ जोड़कर वंदना करता हूं।

सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरुष का समवाय ही सृष्टि का कारण बताया है। इस दर्शन में प्रकृति का ही महत्व हैं क्योंकि इस दर्शन के अनुसार सृष्टि का कारण प्रकृति है। जैन, बौद्ध व शैव दर्शन भी पर्यावरण व प्रकृति प्रति उदात्त भावनाएं लिए है तथा उनके प्रति सजग दृष्टिकोण रखते हैं।
सिंधु सभ्यता के युग में द्रविड़ों की जीवन शैली ने अपने पर्यावरण प्रेम को पशु-पूजा व वृक्ष-पूजा के रूप में उजागर किया है। सिंधु को माता समान माना तथा उसकी पूजा की। द्रविड़ लोग कृषि-जीवी और कालानुरागी थे। इसी सभ्यता की देन है कि आज आर्यों के व्रतों, त्योहारों एवं उत्सवों में पशुओं एवं वृक्षों को महत्व दिया जाता है।
सृष्टि के पालनकर्ता श्री हरि विष्णु के 24 अवतारों में गरुड़ावतार व हंसावतार पक्षियों की प्रतिष्ठा के प्रतीक है, तो वाराह अवतार व नृसिंह अवतार पशुओं के तथा मत्स्यावतार एवं कूर्मावतार जलजीवों के सम्मान के द्योतक है।
मौर्य वंश के सम्राट प्रियदर्शी अशोक ने शिलालेखों पर वन्य पशु-पक्षियों को ना मारने के संबंध में नियम खुदवाये। यहाँ तक कि उन्होंने अपने शिलालेखों में जंगलों में कहीं भी आग ना लगाने के आदेश भी दिए, ताकि वन्यजीवों को हानि ना हो। संसार में अशोक ही पहले राजा हुए जिन्होंने शासन के आदेश के रूप में पहले-पहल वन्य जीवों की सुरक्षा के नियम बनाये थे।

सिख धर्म के पावन ग्रंथ श्री गुरु ग्रंथ साहिब में प्रकृति के निर्जीव व सजीव दोनों रूपों का वर्णन मिलता है। वर्णित है कि समस्त पर्यावरण जिसमें ग्रह, नक्षत्र, तारे, सूर्य, पृथ्वी व जीव-वनस्पतियाँ सभी परमात्मा का प्रकट स्वरूप है। इस भाँति देखा जा सकता है कि प्रत्येक धर्म व धार्मिक ग्रंथों में पर्यावरण की चेतना का स्वर मुखरित हुआ है। मानव, विकास व पर्यावरण- सभी सहजीवी है। इनका एक समान रूप में चलना, कार्यरत रहना पारिस्थितिकी संतुलन है। जीव व पर्यावरण के पारस्पारिक सम्बन्ध कानाम 'पारिस्थिति विज्ञान' या 'पारिस्थितिकी' है। मानव, विज्ञान, विकास व पर्यावरण का एक दूसरे के क्षेत्र में अवलंघन या अतिक्रमण करना पारिस्थितिकी असंतुलन का कारण बनता है।

इस बात में कोई दो राय नहीं है कि मानव ने अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु तथा जीवन को सुखी व सुगम बनाने का प्रयास किया है। इसमें कुछ परिणाम अच्छे आए है तथापि अधिकतर मानवीय सरगर्मियां पर्यावरण को दूषित बनाने का कारण बनी है। अच्छा भविष्य बनाने की आड़ में मनुष्य ने पृथ्वी का प्राकृतिक संतुलन बिगाड़ दिया। 19 वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति के साथ-साथ तबाही का आरम्भ हुआ। विज्ञान का आरंभ प्राकृतिक संसाधनों के दोहन का कारण बना। प्राकृतिक संसाधनों का क्षमण शुरू हुआ और मानव की उद्याम व अधम लालसाओं ने पर्यावरण की समस्याओं की नींव डाली। आज प्रकृति के पंचमहाभूत तत्व- जल, वायु, अग्नि, धरती व आकाश सब प्रदूषण की भेट चढ़ गए हैं। औद्योगिकीकरण ने देश की प्रगति तो की परंतु पर्यावरण की दुर्गति कर दी।

वातावरण के भौतिक, रासायनिक व जैविक अवस्था में ऐसा परिवर्तन जिससे मानव, जानवर, वनस्पतियों अथवा नैसर्गिक प्रतीकों को हानि पहुंचे, वहीं पर्यावरण प्रदूषण है। महर्षि यास्क ने अपने निरुक्त में प्रदूषण की व्याख्या करते हुए कहा है कि-" कोई वस्तु तभी अपनी सत्ता बनाए रख सकती है, जब वह स्वयं को धारण करने में समर्थ हो। जब उसमें बाहरी हस्तक्षेप अधिक होता है अथवा उसकी नैसर्गिक संरचना विकृत होती है तो उसकी आत्मधारणा शक्ति नष्ट हो जाती है, यही उसका प्रदूषण है। वस्तु को निर्माण का जो अनुपात है, वह स्थिर रहना चाहिए। अनुपात भंग हुआ और वस्तु का स्वास्थ्य नष्ट हो गया। वस्तु के स्वास्थ्य का विनष्ट होना ही प्रदूषण है।"
पृथ्वी के ऊपर 700-800 कि०मी० तक वायुमंडल फैला हुआ है, जिसमें कई गैसों का मिश्रण है। इनका निश्चित अनुपात है- नाइट्रोजन = 78.03%, उद्धजन (हाइड्रोजन) 0.01%, उष्मजन (ऑक्सीजन) = 20.99%, आर्गन : 0.93%, कार्बन डाइऑक्साइड = 0.07% । परंतु वायु- प्रदूषकों ने इनकी नैसर्गिक संरचना को विकृत कर दिया है। उर्वरक उद्योगों, कारखानों व इस्पात संयंत्र से निकलने वाले फ्लोरीन, हाइड्रोजन सल्फाइड्स, हाइड्रोजन, फ्लोराइड्स, कैंसर के कारकजन आदि मुख्य वायु-प्रदूषक है। अभिरंजित काँच की क्षति, वस्त्र, परदे, लकड़ी के उपस्करों का खराब होना तथा ओज़ोन विह्रसन इसके परिणाम है। आज मनुष्य त्वचा को लेकर जिन रोगों से ग्रसित है, वे सभी इसी ओज़ोन विह्रसन के परिणामस्वरूप है। ओज़ोन पृथ्वी के ऊपर ऐसी परत है जो उष्मजन के तीन अणुओं के मेल से बनती है तथा सूर्य की हानिकारक किरणों को भूमि पर आने से रोकती है। परंतु जब से यह विह्रसित हुई है, ये हानिकारक किरणें सीधा भूमंडल में आकर प्रवेश करती है और मानव को प्रभावित करती है। आंखों का मोतियाबिंद, त्वचा रोग इसके परिणाम हैं। जल पृथ्वी पर तीन अवस्थाओं में विद्यमान हैं- हिमनद के रूप में वह ठोस अवस्था में है, नदी-नाले, झरनों व समुद्र में वह तरल अवस्था में है और वायु-आर्द्रता में तिरोहित

वह वाष्य रूप में है। प्राकृतिक व शुद्ध जल खनिज लवण युक्त होता है, जो ग्रहण करने योग्य है तथा सुस्वादु है। यह जल पृथ्वी पर 2.8% है अतिरिक्त 97.2% पीने योग्य नहीं है। आसवित (filtered) जल बेमजा सा होता है जिसे सुस्वादु बनाने हेतु उसमें कुछ खनिज मिलाए जाते हैं। "मनुस्मृतिकार" ने जल की शुद्धता के संबंध में स्पष्ट वर्णित है-

"नाप्सु मूत्रं पुरीषं वाष्टोवनं समुत्सृजेत्।"
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितां वा विषाणि वा।।" (मनुस्मृति, 4-56)

अर्थात:- पानी में मल-मूत्र, थूक अथवा अन्य दूषित पदार्थ, रक्त या विष का विसर्जन नहीं करना चाहिए।

आज जल के नैसर्गिक स्वरूप में कई बदलाव हुए है और इसका कारण भिन्न-भिन्न खनिजों व तेल का खनन तथा जल में मिश्रित होते प्रदूषक तत्व । वातावरणीय उत्पत्ति द्वारा उपजे जल-प्रदूषक हैं- कार्बन डाइऑक्साइड,ऑक्सीजन, नाइट्रोजन व सल्फर डाइऑक्साइड । भौतिक उत्पत्ति रूपी जल प्रदूषक हैं- सोडियम, पोटेशियम, केड्मियम, पारा (Mercury), क्लोरीन, सल्फेट, फॉस्फेट, नाइट्रेट आदि तथा जैविक स्त्रोतों के प्रदूषक है श्वसन (Respiration) द्वारा उत्पन्न कार्बन डाइऑक्साइड और प्रकाश संश्लेष्णा ( (Photosynthesis) द्वारा उत्पन्न ऑक्सीजन। प्रदूषित जल भूमि को भी बुरी तरह प्रभावित करता है तथा कई मानव रोगों को जन्म देता है। कीटनाशक व अपतृणनाशी भी जल को दूषित करते है। दिल्ली में यमुना का प्रदूषित होना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्रदूषित जल भूमि को जब दूषित करता है तो उसे 'भूमि प्रदूषण' कहते हैं। भूमि की उत्पादक शक्ति का विनाश होता है। पेड़ों की अंधाधुंध कटाई भू-क्षरण का कारण है जिससे भूमि की उपजाऊ परत ढ़ह जाती है। काष्ठ-व्यापार अधिकांश विकसित देशों में होता है। विश्व के काष्ठ का व्यापार 53% जापान में, 15% अमेरिका में तथा 32% यूरोपीय देशों में होता है। विकसित देशों में लकड़ी की खपत 213 किलोग्राम प्रति व्यक्ति तथा विकासशील देशों में 19 किलोग्राम प्रति व्यक्ति है। यही वन कटाई का प्रमुख कारण है। इसके परिणाम भू-क्षरण, बाढ़,असमय सूखा आदि हैं।

120 डेसिबल से ऊँची आवाज़ जो कि सभी के लिए कष्टदायक होती है वह भी एक प्रदूषण है, जिसे 'ध्वनि प्रदूषण' का नाम दिया गया है। इस प्रदूषण के बुरे प्रभाव हैं - अनिद्रा, रक्तचाप, बहरापन । इससे स्नायुयंत्र भी बुरी तरह प्रभावित होता है। हर प्रकार का प्रदूषण प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से मानवरोगक्षमण प्रणाली को प्रभावित करता है तथा उसे कमज़ोर करता है।

आज आधुनिक युग में पर्यावरण को लेकर एक और समस्या सामने आ खड़ी हुई है और वह है-अम्बलवर्षा। जब वर्षा में हवा में मौजूद प्रदूषकों के कारण अम्लीयता आ जाती है, तो उसे अम्बलवर्षा/अम्लवर्षा कहते है। इसका पी•एच• मान 5 से कम होता है। उद्योगों से निकलने वाले वायु तिरोहित प्रदूषक तत्व नाइट्रोजन ऑक्साइड, सल्फ्यूरिक एसिड तथा ताँबे और जस्त को पिघलाने पर उत्सर्जित होने वाला सल्फर-डाइआक्साइड इस वर्षा में मौजूद रहता है। यह भूमि की उपजाऊ क्षमता को क्षीण करता है तथा वृक्षों में कई बीमारियों को जन्म देता है। जैसे- अहरितता, पत्तों की उपत्वचा का नष्ट होना, रंध्रों का कार्य सही प्रकार से ना होना आदि। इस वर्षा से जैविक समुदाय को भी हानि पहुंचती है, मछलियों व अन्य जलचर जीवों की मृत्यु होना। यह धरती में रहने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं को धीरे-धीरे अक्रिय करती है जिससे वे विषाक्त हो जाते है। इससे मौलिक पोषक चक्र भी प्रभावित होता है। प्रकृति

के इस बदलाव से जब मनुष्य अत्याधिक प्रभावित होने लगा तो मानव सचेत हो गया और उसने चितंन करना शुरू किया। कई कार्यक्रम चलाए गए, कार्यशालाएं आयोजित की गई और प्रकृति व पर्यावरण संरक्षण के लिए कदम उठाए गए। संयुक्त राष्ट्र की आम सभा में 15 दिसम्बर 1972 को विश्व-पर्यावरण संरक्षण का एक 'संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण प्रोग्राम' तैयार किया गया जिसमें पर्यावरण की समस्याओं व उनके समाधानों पर विभिन्न देशों की सरकारों को निर्देश दिए गए। इसके बाद सन् 1972 में मानव-पर्यावरण पर स्टॉकहोम सम्मेलन में 'अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण दिवस' की स्थापना की गई। पहली बार यह दिवस 05 जून 1973 में मनाया गया और तब से लेकर प्रतिवर्ष 05 जून को 'अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण दिवस' तथा 22 अप्रैल को 'अंतर्राष्ट्रीय पृथ्वी/भूमि दिवस' मनाया जाता है।

सन् 1987 में मानट्रियल प्रोटोकोल का आयोजन हुआ, जिसमें सी०एफ० सी को उपयोग के सीमित और अंततः बंद करने के लिए समझौते और अनुबंध किए गए। यह अनुबंध विशेषत: कीटनाशक व अपतृणनाशी से निकले CFC-11, CFC-12 तथा औद्योगिक क्रियाओं के अवशेष CFC-11 को लिए थे। इसमें कहा गया कि विकासशील राष्ट्र इनका उपयोग 1997 तक पूर्ण रूप से कर सकते है, फिर वे 2005 तक इनका उपयोग 50% कम कर देगें और अंत में 2010 तक इनका प्रयोग पूर्ण रूप से बंद कर देंगे। इसके साथ ही विकसित देश CFC का प्रयोग 1996 तक पूर्ण रूप से बंद कर देगें। क्योंकि यही ओज़ोन विह्रसन का मुख्य कारक तत्व है। जून 1988 में टोरंटों में हुए सम्मेलन में ग्रीन हाउस प्रभाव तथा उससे संबंधित खतरों पर वैज्ञानिकों ने चिंता व्यक्त की। वर्ष 1994-95 की 'विश्व संसाधन रिर्पोट' के अनुसार भारत में 70% पानी की सप्लाई मल-जल से दूषित है।
प्राकृतिक संकट को समझने, जानने और उपलब्ध विकल्पों पर क्रियान्वयन के उद्देश्य से 2016 में हिंदी विभाग, करोडीमल महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय) द्वारा संगोष्ठी आयोजित की गई। जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय असंतुलन विषय पर आधारित 'साहित्य और पर्यावरण' नामक दो दिवसीय संगोष्ठी में विभिन्न पर्यावरणविदों, विभिन्न विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिक एवं विषय के विशेषज्ञों तथा गैर सरकारी संस्थानों के कार्यकर्ताओं से पर्यावरण की विभिन्न समस्याओं पर गहन विचार-विमर्श लिया गया।
एक वैज्ञानिक शोध के अनुसार- "जहां 1894 में मध्य हिमालय की अलकनंदा बाढ़ पूर्णतया प्राकृतिक थी, वहीं 1970 की अलकनंदा बाढ़ को विध्वंशक बनाने में जंगलों के दोहन का योगदान रहा है।" इसके पश्चात् वनों को बचाने व बढ़ाने हेतु 'चिपको आंदोलन' आरंभ किया गया। ईश्वर ने मानव को सर्वोत्तम स्थान देते हुए उसे पृथ्वी पर उत्पन्न चीज़ों की रक्षा का दायित्व सौंपा है, अतः मनुष्य को चाहिए कि वह प्रकृति व प्राकृतिक संसाधनों का उचित प्रयोग करें तथा उनका संरक्षण करें ताकि आने वाली पीढ़ियां भी भविष्य में उनका लाभ उठा सकें। संरक्षण व उचित प्रयोग की यह प्रक्रिया जब विकास के साथ साथ चलती है तो इसी को ही सतत विकास कहते है। भूमि के जीवन को स्वस्थ, उर्जापूर्ण तथा इसकी विविधता को बनाए रखना वर्तमान व भविष्य दोनों के लिए अनिवार्य है। आज मानव को अपने व्यवहार व विचारों में स्थिरता लाने की आवश्यकता है कि उसे किस प्रकार से अपने भविष्य के लिए प्रकृति व पर्यावरण को बचाना है। इसके लिए आवश्यक है कि वह जागरूक हो पर्यावरण संरक्षण व संवर्धन को लेकर और साथ ही पृथ्वी, , प्रकृति व पर्यावरण के लिए ज़मीनी स्तर पर कार्य करनी की। इसी से प्रकृति व मनुष्य के संबंध में स्थिरता आ सकती है और प्रकृति में संतुलन बना रह सकता है। मनुष्य को समाप्त होते हुए प्राणियों व वनस्पतियों के जीवित रहने के हालात पैदा करने चाहिए। यह सब संभव है सही शिक्षा, दृष्टिकोण,

विशेषज्ञता, उधित जागृति के साथ साथ सहभागिता के द्वारा। आज पर्यावरण का संतुलन बनाए रखने की परम-आवश्यकता है अन्यथा हमारा जीवन तथा हमारी धरती बेरंग हो जाएगी।आथवर्ण ऋषि ने अथर्ववेद के 'पृथिवी सूक्त 'में जीवनदायिनी धरा की महानता, उदारता, सर्वव्यापकता, सर्वशक्तिमानता आदि अनंत गुणों पर विमुग्ध होकर इस धरती की स्तुति व प्रार्थना तो की है, साथ ही यह संल्प्पमय इच्छा भी व्यक्त की है कि - "भूमि के जिस स्थान पर में खनन करूं- वहां शीघ्र ही हरियाली छा जाए। है माँ, आपसे प्रार्थना है कि मुझे ऐसी सद्बुद्धि दें जिससे आपके हृदय स्थल को ना तो मैं आहत करूं और ना ही आपको दुःख पहुंचाऊं (मंत्र 25)।" पर्यावरण संरक्षण के लिए आज सच्चे हृदय से इसी संकल्प की आज परमावश्यकता है। इसके साथ ही आवश्यकता है प्रदूषण रहित प्रगति की, विवादहीन प्रगति की जो वास्तव में विकास की सूचक है। भविष्य के लिए प्रदूषणरहित पर्यावरण की आशा करते हुए निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि यदि क्रियात्मक-अध्यात्म का परिपालन करते हुए विरासत की सुरक्षा की जाए और अपनी अधम तृष्णा पर अंकुश लगाया जाए तो ही प्रकृति व पर्यावरण को बचाया जा सकता है। इसके साथ ही प्रकृति को माता की दृष्टि से देखकर उसे पूजनीय स्थान देते हुए उसके प्रत्येक तत्व में ईश्वर का रूप देखना चाहिए तथा उसके संरक्षण और संवर्धन को अपना धर्म मानकर उसका पालन किया जाना चाहिए।

International Research Journal
IJNRD
Research Through Innovation